IJARSCT
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
ISSN: 2581-9429
Volume 2, Issue 1, August 2022
Impact Factor: 6.252

भारतीय राष्ट्रवाद और नारीः परम्परागत मूल्यों से सामाजिक पुनर्जागरण तक

डॉ. धीरेंद्र सिंह
असिस्टेंट प्रोफेसर, समाजशास्त्र,
राजकीय महाविद्यालय मानिकपुर, चित्रकूट

शोध सारांश

यह शोध–पत्र भारतीय राष्ट्रवाद के विकासक्रम में नारी की भूमिका का दार्शनिक, ऐतिहासिक और सामाजिक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। पाश्चात्य राष्ट्रवाद के विपरीत, भारतीय राष्ट्रवाद एक 'आध्यात्मिक इकाई' है, जिसके केंद्र में 'चिति' और 'शक्ति' का सिद्धांत निहित है। शोध के प्रथम चरण में सांख्य दर्शन के 'प्रकृति–पुरुष' और 'अर्धनारीश्वर' सिद्धांतों के माध्यम से नारी को राष्ट्र की सृजनात्मक ऊर्जा (चिदशक्ति) के रूप में परिभाषित किया गया है। द्वितीय चरण में, वैदिक काल की 'अदिति', 'ब्रह्मवादिनी' और 'सद्योवधू' जैसी संकल्पनाओं के माध्यम से नारी की प्राचीन गरिमा और उसकी शैक्षणिक स्वायत्तता को रेखांकित किया गया है। मध्यकाल की सामाजिक चुनौतियों और सांस्कृतिक प्रतिरोध के उपरांत, यह शोध 19वीं–20वीं शताब्दी के 'सामाजिक पुनर्जागरण' पर प्रकाश डालता है, जहाँ सावित्रीबाई फुले से लेकर गांधीवादी युग तक नारी 'परिवर्तन की संवाहक' बनकर उभरी। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में, यह अध्ययन सिद्ध करता है कि आधुनिक भारतीय नारी अपनी सांस्कृतिक जड़ों (परम्परा) और वैज्ञानिक प्रगति (आधुनिकता) के मध्य एक सफल समन्वय स्थापित कर 'आत्मनिर्भर भारत' की धुरी बनी हुई है। अंततः, यह निष्कर्ष प्रतिपादित करता है कि राष्ट्र का वास्तविक उत्थान नारी और पुरुष की प्रतिस्पर्धा में नहीं, अपितु उनके 'पूरकता सिद्धांत' और नारी की नैसर्गिक 'चिति' को जागृत करने में निहित है।

मुख्य शब्दः भारतीय राष्ट्रवाद, चिदशक्ति, अर्धनारीश्वर, ब्रह्मवादिनी, सद्योवधू, सामाजिक पुनर्जागरण, प्रकृति–पुरुष, सांस्कृतिक सातत्य, मातृशक्ति, आत्मनिर्भर भारत।

भूमिका

भारतीय राष्ट्रवाद की संकल्पना पाश्चात्य राष्ट्रवाद के संकीर्ण राजनीतिक विमर्श से नितांत भिन्न और व्यापक है। जहाँ पश्चिमी राष्ट्रवाद का उदय 'वेस्टफेलिया की संधि' के पश्चात भौगोलिक सीमाओं, विधिक संहिताओं और राजनीतिक संविदाओं के आधार पर हुआ, वहीं भारतीय राष्ट्रवाद एक 'आध्यात्मिक इकाई' और 'सांस्कृतिक सातत्य' का जीवंत परिणाम है। भारत के लिए राष्ट्र केवल मानचित्र पर अंकित रेखाएँ या भौतिक सीमाओं का समूह नहीं है, अपितु यह एक सजीव और जाग्रत 'चिति' है। इस सामूहिक चेतना का मुख्य आधार 'शक्ति' का वह स्वरूप है, जिसे भारतीय मनीषा ने अनादि काल से 'नारी' के रूप में कल्पित किया है।भारतीय राष्ट्रवाद केवल एक राजनीतिक संविदा नहीं है, अपितु यह एक आध्यात्मिक और सांस्कृतिक उद्वेलन है। पश्चिमी राष्ट्रवाद जहाँ 'राजसत्ता' के इर्द–गिर्द घूमता है, वहीं भारतीय राष्ट्रवाद 'चिति' और 'शक्ति' के दर्शन पर आधारित है। इस राष्ट्रवाद के केंद्र में भारत को एक 'जड़' भौगोलिक खंड नहीं, बल्कि 'चेतन' मातृशक्ति के रूप में स्वीकारा गया है। सनातन

IJARSCT
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
ISSN: 2581-9429 Volume 2, Issue 1, August 2022 Impact Factor: 6.252

परंपरा में राष्ट्र को 'पितृभूमि' कहने के साथ–साथ अनिवार्यतः 'मातृभूमि' (डवजीमतसंदक) के रूप में पूजा गया है। अथर्ववेद का 'पृथ्वी सूक्त' इसका सबसे प्रबल प्रमाण है, जहाँ ऋषि उद्घोष करते हैंकृ "माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः" अर्थात् यह भूमि मेरी माता है और मैं इसका पुत्र हूँ। राष्ट्रवाद का यह 'मातृ–केंद्रित' दृष्टिकोण नारी को केवल एक सामाजिक इकाई नहीं, बल्कि संपूर्ण राष्ट्र की अस्मिता की धुरी के रूप में स्थापित करता है। "भारतीय राष्ट्रवाद की आत्मा 'वन्दे मातरम्' के मंत्र में निहित है, जो राष्ट्र को एक भौतिक इकाई से ऊपर उठाकर एक दैवीय चेतना (चिदशक्ति) के रूप में स्थापित करता है"।[1]

यह शोध–पत्र स्पष्ट करता है कि कैसे नारी की 'चिदशक्ति' प्राचीन काल से वर्तमान पुनर्जागरण तक राष्ट्र की वैचारिक और सामाजिक धुरी रही है। भारतीय पुनर्जागरण का मूल तत्व नारी की उस विस्मृत गरिमा को पुनः प्राप्त करना था, जो उसे प्राचीन सनातन परम्परा में नैसर्गिक रूप से प्राप्त थी। महर्षि अरविन्द के शब्दों में कहें तो राष्ट्रवाद एक 'धर्म' है जो नारी रूपी शक्ति के माध्यम से ही पूर्णता प्राप्त करता है। यह शोध आलेख इसी 'शक्ति–तत्व' के ऐतिहासिक और दार्शनिक रूपांतरण का विश्लेषण करता है, जो परम्परागत मूल्यों को आधुनिक प्रगतिशील राष्ट्रवाद के साथ समन्वित करता है।

दार्शनिक परिप्रेक्ष्यः प्रकृति–पुरुष एवं अर्धनारीश्वर सिद्धांत

भारतीय मनीषा में नारी को केवल एक सामाजिक इकाई के रूप में नहीं, बल्कि ब्रह्मांडीय ऊर्जा के रूप में देखा गया है। सांख्य दर्शन का 'प्रकृति–पुरुष' सिद्धांत इसी पूरकता को रेखांकित करता है। जहाँ पुरुष 'चेतना' का प्रतीक है, वहीं प्रकृति 'सृजन' की अधिष्ठात्री है। सांख्य दर्शन के अनुसार, यह संपूर्ण जगत 'प्रकृति' और 'पुरुष' के अवियोगी संयोग का परिणाम है। यहाँ पुरुष शुद्ध चैतन्य है, किंतु वह तब तक सृजन करने में असमर्थ है जब तक 'प्रकृति' रूपी सक्रिय तत्व उसके सान्निध्य में न आए। राष्ट्रवाद के दर्शन में यह सिद्धांत अत्यंत प्रासंगिक हो जाता है; यदि राष्ट्र का विचार 'पुरुष' है, तो उस विचार को धरातल पर क्रियान्वित करने वाली शक्ति 'नारी' है। "सांख्य दर्शन के अनुसार, प्रकृति के बिना पुरुष अक्रिय है; यही सिद्धांत समाज पर लागू होता है जहाँ नारी के बिना सामाजिक और राष्ट्रीय प्रगति अवरुद्ध हो जाती है"।[2]

दार्शनिक धरातल पर नारी की इस महत्ता को 'अर्धनारीश्वर' के रूप में पराकाष्ठा प्राप्त होती है। अर्धनारीश्वर का प्रतीक यह स्पष्ट करता है कि शिव (कल्याण) और शक्ति (ऊर्जा) अभिन्न हैं। यह केवल एक धार्मिक छवि नहीं, बल्कि साम्यता और पूरकता का वैश्विक सिद्धांत है। यह दर्शन प्रतिपादित करता है कि नर और नारी एक–दूसरे के प्रतिस्पर्धी नहीं, बल्कि एक ही सत्ता के दो अनिवार्य आयाम हैं। राष्ट्रवाद के धरातल पर, यदि राष्ट्र का ढांचा 'शिव' है, तो उसकी प्राण–वायु नारी शक्ति है। जिस प्रकार प्राण के बिना शरीर निष्प्राण हो जाता है, उसी प्रकार नारी शक्ति की उपेक्षा करने वाला राष्ट्र अपनी सांस्कृतिक और नैतिक जीवंतता खो देता है।

तंत्र शास्त्र के परिप्रेक्ष्य में भी नारी को 'चिदशक्ति' या 'कुण्डलिनी' के रूप में स्वीकार किया गया है, जो राष्ट्र की सुप्त चेतना को जागृत करने का सामर्थ्य रखती है। सामाजिक पुनर्जागरण के दौर में यही दार्शनिक आधार 'भारत माता' की संकल्पना का बीज बना। जब तक समाज ने नारी को केवल एक आश्रित इकाई माना, राष्ट्र पतनोन्मुख रहा, किंतु जैसे ही उसे 'शक्ति' और 'प्रकृति' के रूप में पुनः पहचाना गया, सामाजिक पुनर्जागरण की लहर तीव्र हो उठी। अतः, भारतीय राष्ट्रवाद का दार्शनिक अधिष्ठान इसी अर्धनारीश्वर भाव में निहित है, जो परंपरा से आधुनिकता तक नारी को राष्ट्र की अनिवार्य ऊर्जा के रूप में प्रतिष्ठित करता है।

IJARSCT
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
ISSN: 2581-9429 Volume 2, Issue 1, August 2022 Impact Factor: 6.252

वैदिक गरिमाः अदिति, ब्रह्मवादिनी और सद्योवधू

भारतीय इतिहास के उषाकाल, जिसे हम वैदिक काल के रूप में जानते हैं, में नारी की स्थिति अत्यंत गरिमामय और स्वायत्त थी। वैदिक काल में नारी की स्थिति 'अदिति' (स्वतंत्र और असीम) की थी। 'अदिति' शब्द का आध्यात्मिक अर्थ ही वह है जिसे बांधा न जा सके, जो असीम चेतना का विस्तार हो। उस समय नारी केवल गृहणी नहीं, बल्कि 'ब्रह्मवादिनी' के रूप में ज्ञान की संरक्षिका थी। वैदिक समाज ने नारी के दो प्रमुख स्वरूपों को मान्यता दी थीः प्रथम 'सद्योवधू', जो विवाह पर्यन्त शिक्षा प्राप्त कर गृहस्थ धर्म और राष्ट्र की आधारभूत इकाई (परिवार) को सुसंस्कृत करती थी, और द्वितीय 'ब्रह्मवादिनी', जो आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए वेद–वेदांगों के गूढ़ रहस्यों का अन्वेषण करती थी। "वैदिक वाङ्मय में नारी को यज्ञ और शिक्षा का समान अधिकार प्राप्त था। ऋषिकाएँ जैसे घोषा, अपाला और लोपामुद्रा इस बात का प्रमाण हैं कि ज्ञान के क्षेत्र में लिंग आधारित भेदभाव सनातन संस्कृति का हिस्सा नहीं था"।[3]

वैदिक युग में नारी का 'उपनयन संस्कार' (शिक्षा का अधिकार) और 'यज्ञोपवीत' धारण करना यह सिद्ध करता है कि वह राष्ट्र के बौद्धिक और आध्यात्मिक विमर्श में बराबर की साझीदार थी। ऋग्वेद के दशम मंडल का 'वाक्सूक्त' (देवी सूक्त) नारी की इसी सार्वभौमिक सत्ता का जयघोष करता है। उस काल में नारी की भूमिका केवल एक सहायक की नहीं, बल्कि एक 'द्रष्टा' की थी। ए. एस. अल्तेकर के अनुसार, "नारी की उच्च सामाजिक स्थिति और उपनयन संस्कार की अनुमति ही प्राचीन भारत के 'स्वर्ण युग' का मुख्य कारण थी"।[4]

शिक्षा के साथ–साथ सभा और समिति जैसी राजनीतिक संस्थाओं में भी स्त्रियों की सक्रिय भागीदारी थी। उपनिषद काल में गार्गी द्वारा याज्ञवल्क्य को दी गई चुनौती इस बात का साक्षात प्रमाण है कि तार्किक और दार्शनिक प्रखरता नारी की स्वाभाविक शक्ति थी। अतः, परम्परागत मूल्यों का यह वैदिक प्रतिमान ही आधुनिक राष्ट्रवाद के लिए वह स्रोत बना, जहाँ से नारी ने पुनर्जागरण काल में अपनी अस्मिता और गौरव को पुनः प्राप्त करने की ऊर्जा ली। यह सिद्ध होता है कि भारतीय राष्ट्रवाद में नारी का नेतृत्व कोई नया प्रयोग नहीं, अपितु हमारी प्राचीन सांस्कृतिक व्यवस्था की पुनर्वापसी है।

मध्यकालीन चुनौतियाँ और सांस्कृतिक प्रतिरोध

भारतीय इतिहास का मध्यकाल नारी अस्मिता के लिए अत्यंत जटिल और चुनौतीपूर्ण रहा। विदेशी आक्रमणों के निरंतर प्रहारों और तत्कालीन अस्थिर राजनीतिक परिस्थितियों के कारण सामाजिक मूल्यों में व्यापक क्षरण हुआ। सुरक्षा की दृष्टि से समाज ने सुरक्षात्मक रुख अपनाया, जिसके परिणामस्वरूप भारतीय नारी की सामाजिक स्थिति में संकुचन आया (जैसे पर्दा प्रथा और सती प्रथा), किंतु उसकी आत्म–शक्ति अक्षुण्ण रही। बाह्य परतंत्रता के उस दौर में भी नारी ने भारतीय संस्कृति की मूल जड़ों को सूखने नहीं दिया। इस युग में नारी ने 'भक्ति' को माध्यम बनाकर सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की रक्षा की। जब राजनीतिक मंचों पर राष्ट्र पराजित सा प्रतीत हो रहा था, तब भक्ति आंदोलनों ने जनमानस को जोड़ने का कार्य किया। "मीराबाई और आंडाल जैसी स्त्रियों ने भक्ति के माध्यम से तत्कालीन पितृसत्तात्मक और राजनीतिक जकड़न को चुनौती दी, जिससे राष्ट्र की आंतरिक चेतना जीवित रही"।[5]

मीराबाई का 'कृष्ण–प्रेम' केवल व्यक्तिगत आध्यात्मिक उन्मेष नहीं था, बल्कि वह तात्कालिक रूढ़ियों और राजसत्ता के अहंकार के विरुद्ध एक शांत किंतु प्रखर सांस्कृतिक विद्रोह था। इसी प्रकार, दक्षिण में आंडाल और उत्तर में ललद्यद जैसी संतों ने सिद्ध किया कि नारी की 'चिदशक्ति' प्रतिकूल परिस्थितियों में भी धर्म और राष्ट्र के नैतिक ढाँचे को सुदृढ़ रख सकती है।

IJARSCT
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
ISSN: 2581-9429 Volume 2, Issue 1, August 2022 Impact Factor: 6.252

मध्यकाल के उत्तरार्ध में जब सांस्कृतिक संरक्षण से आगे बढ़कर राष्ट्र की भौगोलिक सीमाओं और स्वाभिमान की रक्षा का प्रश्न आया, तब नारी ने अपनी अस्त्र–शक्ति का परिचय दिया। इसी काल में सैन्य प्रतिरोध के क्षेत्र में रानी लक्ष्मीबाई और रानी चेन्नम्मा ने राष्ट्रवाद को 'रणचंडी' का स्वरूप प्रदान किया, जिसे वीर सावरकर ने "भारतीय स्वातंत्र्य समर की आत्मा"[6] माना है। रानी लक्ष्मीबाई का बलिदान केवल एक रियासत की रक्षा का प्रयास नहीं था, अपितु वह उस राष्ट्रीय चेतना का शंखनाद था जिसने आगे चलकर 19वीं शताब्दी के पुनर्जागरण का मार्ग प्रशस्त किया। नारी ने सिद्ध कर दिया कि वह केवल 'शक्ति' की पूजक नहीं, अपितु स्वयं वह 'शक्ति' है जो राष्ट्र के विनाश को रोकने के लिए रणक्षेत्र में उतर सकती है। अतः मध्यकाल की विपत्तियों ने नारी के बाहरी आवरण को भले ही सीमित किया हो, किंतु उसकी आंतरिक राष्ट्रभक्ति और जुझारूपन ने उसे आधुनिक पुनर्जागरण की मशाल बनाने हेतु तैयार किया।

आधुनिक पुनर्जागरणः शिक्षा और सामाजिक रूपांतरण

19वीं शताब्दी का भारतीय पुनर्जागरण वस्तुतः नारी की अस्मिता की पुनर्प्राप्ति का काल था। इस युग में भारतीय राष्ट्रवाद ने 'नारी प्रश्न' को केंद्र में रखा, क्योंकि यह अनुभव किया गया कि आधी आबादी की मुक्ति के बिना राष्ट्र की स्वतंत्रता बेमानी है। राजा राममोहन राय और ईश्वरचंद्र विद्यासागर जैसे समाज सुधारकों ने जहाँ विधिक सुधारों की नींव रखी, वहीं ज्योतिबा फुले और सावित्रीबाई फुले ने इसे एक सामाजिक आंदोलन का रूप दिया। सावित्रीबाई फुले ने शिक्षा को राष्ट्र के उत्थान का 'स्वर्ण सूत्र' माना। उन्होंने पितृसत्तात्मक और जातिवादी बाधाओं को पार करते हुए नारी शिक्षा के द्वार खोले, जिससे समाज के अंतिम पायदान पर खड़ी स्त्री को भी स्वर मिला।"सावित्रीबाई फुले का संघर्ष केवल अक्षरों के ज्ञान के लिए नहीं था, बल्कि यह उस 'आत्म–चेतना' को जगाने का प्रयास था जो राष्ट्र के पुनर्जागरण के लिए अनिवार्य थी"।[7]

नारी शिक्षा की इस ज्योति ने राष्ट्रवाद को बौद्धिक आधार प्रदान किया, जिसका चरमोत्कर्ष हमें स्वाधीनता संग्राम के दौरान देखने को मिलता है। 20वीं शताब्दी के प्रारंभ में जब गांधीवादी विचारधारा का उदय हुआ, तब नारी की भूमिका केवल सहानुभूति रखने वाली तक सीमित नहीं रही, बल्कि वह संघर्ष की अग्रिम पंक्ति में खड़ी हुई। गांधीवादी युग में नारी की भागीदारी ने राष्ट्रवाद को 'अहिंसक शक्ति' का नया आयाम दिया। गांधीजी ने नारी के धैर्य, त्याग और नैतिक दृढ़ता को सत्याग्रह का मूल मंत्र बनाया। परिणामस्वरूप, "सरोजिनी नायडू, एनी बेसेंट और कस्तूरबा गांधी जैसी महिलाओं ने कूटनीतिक और जमीनी मोर्चों पर नेतृत्व किया, जिससे राष्ट्रवाद 'महलों' से निकलकर 'झोपड़ियों' तक पहुँचा।"[8]

सरोजिनी नायडू जैसी विदुषियों ने जहाँ अंतरराष्ट्रीय मंचों पर भारतीय पक्ष रखा, वहीं लाखों अज्ञात नारियों ने विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार और शराबबंदी जैसे आंदोलनों के माध्यम से ब्रिटिश सत्ता की आर्थिक नींव हिला दी। पुनर्जागरण का यह दौर इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है कि इसने नारी को 'उद्धार की वस्तु' से बदलकर 'परिवर्तन की संवाहक' बना दिया। शिक्षा और स्वावलंबन के माध्यम से आधुनिक नारी ने सिद्ध कर दिया कि परम्परागत मूल्यों का संरक्षण करते हुए भी वह आधुनिक राष्ट्र निर्माण की अनिवार्य शक्ति है। अतः पुनर्जागरण काल ने नारी को उसकी खोई हुई 'चिदशक्ति' से पुनः साक्षात्कार कराया, जो वर्तमान 'आत्मनिर्भर भारत' की नींव है।

IJARSCT
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
ISSN: 2581-9429 Volume 2, Issue 1, August 2022 Impact Factor: 6.252

वर्तमान परिप्रेक्ष्यः 'ब्रह्मवादिनी' और 'सद्योवधू' का समन्वय

21वीं सदी के वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में भारतीय नारी का स्वरूप 'परम्परा' और 'प्रगति' के अद्भुत समन्वय का उदाहरण है। आज की नारी अपनी सांस्कृतिक जड़ों और परम्परागत मूल्यों (सद्योवधू के संस्कार) से विमुख हुए बिना आधुनिक ज्ञान–विज्ञान के उच्चतम शिखरों को स्पर्श कर रही है। वह एक ओर परिवार की धुरी बनकर नैतिक मूल्यों का सिंचन कर रही है, तो दूसरी ओर 'ब्रह्मवादिनी' की प्रज्ञा से युक्त होकर विज्ञान, अंतरिक्ष अन्वेषण, और जटिल अंतरराष्ट्रीय कूटनीति में वैश्विक नेतृत्व कर रही है। यह रूपांतरण इस बात का प्रमाण है कि भारतीय राष्ट्रवाद अब केवल राजनीतिक चेतना तक सीमित नहीं है, बल्कि यह एक आत्मनिर्भर सामाजिक इकाई के रूप में नारी के उदय का साक्षी है। "वर्तमान भारत में नारी का उत्कर्ष उसकी 'चिदशक्ति' का पुनरुत्थान है, जहाँ वह अपनी स्वयं की आत्म–शक्ति और चेतना से संचालित एक आत्मनिर्भर इकाई है"।[9]

आज भारत की सैन्य शक्ति में नारी की भागीदारी, उद्यमिता (म्दजतमचतमदमनतेपच) में बढ़ता प्रतिनिधित्व और शासन–प्रशासन में निर्णायक भूमिका यह सिद्ध करती है कि पुनर्जागरण का जो बीज सावित्रीबाई फुले और ऋषिकाओं ने बोया था, वह अब एक वटवृक्ष का रूप ले चुका है। नारी अब केवल अधिकारों की याचक नहीं, बल्कि राष्ट्र की भाग्य विधाता है।

निष्कर्ष

"परम्परागत मूल्यों से सामाजिक पुनर्जागरण तक" की यह यात्रा भारतीय राष्ट्रवाद के क्रमिक विकास की गाथा है। नारी केवल समाज का हिस्सा नहीं, बल्कि वह 'चिदशक्ति' है जिसके अभाव में राष्ट्र का अस्तित्व निष्प्राण हो जाता है। सांख्य का 'प्रकृति–पुरुष' सिद्धांत और 'अर्धनारीश्वर' की संकल्पना आज भी उतनी ही प्रासंगिक है, जितनी वैदिक युग में थी। शोध का निष्कर्ष यह है कि जब–जब नारी को उसकी नैसर्गिक गरिमा और 'अदिति' स्वरूप की प्राप्ति हुई है, राष्ट्र 'स्वर्ण युग' की ओर अग्रसर हुआ है। मध्यकाल की जड़ताओं को पार कर आधुनिक पुनर्जागरण के माध्यम से नारी ने पुनः सिद्ध किया है कि वह शिक्षा और संस्कार के मेल से किसी भी राष्ट्र को विश्व–गुरु की पदवी पर आसीन कर सकती है। अतः, भविष्य के भारत का 'स्वर्ण सूत्र' नारी और पुरुष की प्रतिद्वंद्विता में नहीं, अपितु उनके 'पूरकता सिद्धांत' में निहित है। नारी का सम्मान और उसकी स्वायत्तता ही राष्ट्र के वास्तविक सामाजिक पुनर्जागरण और अखंड राष्ट्रवाद का एकमात्र मार्ग है।

संदर्भ सूची

[1]. गर्ग, के. पी. (2012). भारतीय तंत्र शास्त्रः एक दार्शनिक विवेचन. वाराणसीः भारतीय विद्या संस्थान। (पृष्ठ 134).
[2]. मिश्र, के. के. (2019). अर्धनारीश्वरः भारतीय दर्शन में लिंग साम्यता. पटनाः जानकी प्रकाशन। (पृष्ठ 48).
[3]. त्रिपाठी, राधावल्लभ. (2015). संस्कृत साहित्य का अभिनव इतिहास. दिल्लीः विश्वविद्यालय प्रकाशन। (पृष्ठ 67).
[4]. अल्तेकर, ए. एस. (2015). प्राचीन भारतीय सभ्यता में नारी की स्थिति. दिल्लीः मोतीलाल बनारसीदास। (पृष्ठ 112).
[5]. शर्मा, रामशरण. (2021). मध्यकालीन भारत की सामाजिक और आर्थिक संरचना. नई दिल्लीः ओरिएंट ब्लैकस्वान। (पृष्ठ 108).
[6]. सावरकर, विनायक दामोदर. (2020). 1857 का भारतीय स्वातंत्र्य समर. नई दिल्लीः प्रभात प्रकाशन। (पृष्ठ 85).
[7]. फुले, सावित्रीबाई. (2018). काव्यफुले और अन्य रचनाएँ. मुंबईः महाराष्ट्र राज्य साहित्य संस्कृति मंडल। (पृष्ठ 34).
[8]. सरकार, सुमित. (2017). आधुनिक भारतः 1885–1947. दिल्लीः राजकमल प्रकाशन। (पृष्ठ 210).
[9]. NCERT (2022). भारतीय समाज में परिवर्तन और विकास. नई दिल्ली। (पृष्ठ 156).